राज कली कुएर

बनाम

राम रत्तन पांडेय

(माननीय न्यायमूर्ति विवियन बोस, न्यायमूर्ति जगन्नाधदास तथा न्यायमूर्ति सिन्हा)

हिंदू विधि—पुजारी एवं पांडा का वंशानुगत धार्मिक पद—हिंदू महिला—उत्तराधिकार का अधिकार—प्रचलन।

यद्यपि किसी हिंदू महिला को शास्त्रीय विधि से स्थापित एवं प्रतिष्ठित देवमूर्तियों की पूजा-अर्चना करने हेतु पुजारी के रूप में स्वयं कार्य करने से व्यक्तिगत रूप से अयोग्य माना जाता है, तथापि किसी हिंदू महिला का ऐसे धार्मिक पद पर उत्तराधिकार प्राप्त करना तथा उस पद के कर्तव्यों का निर्वहन किसी सक्षम प्रतिनिधि के माध्यम से कराना, एक सुविदित एवं मान्य प्रचलन है, और यह न तो शास्त्रीय हिंदू विधि के विरुद्ध है और न ही लोकनीति के प्रतिकूल है। यह आवश्यक है कि उस पद के कर्तव्यों का समुचित एवं प्रभावी निर्वहन सुनिश्चित किया जाए, और आवश्यकता पड़ने पर उपयुक्त कार्रवाई द्वारा इसे सुरक्षित रखा जाए। इन शर्तों के अधीन, किसी हिंदू महिला को अपने पति द्वारा धारित पुजारी एवं पांडा के वंशानुगत धार्मिक पद पर उत्तराधिकार प्राप्त करने का अधिकार है तथा वह उस पद के कर्तव्यों का निर्वहन किसी प्रतिस्थानी के माध्यम से करा सकती है, सिवाय उन स्थितियों के जहाँ इसके विपरीत कोई प्रचलन प्रस्तुत एवं सिद्ध किया गया हो।

प्रश्न (निर्णीत नहीं)—क्या तथा किस सीमा तक, यदि मंदिर एक सार्वजनिक संस्था है (अर्थात् निजी पारिवारिक मंदिर नहीं है), तो पुजारी अपने पारिश्रमिक के रूप में भक्तों द्वारा अर्पित नैवेद्य अथवा चढ़ावे का उपभोग कर सकता है, तथा इस संबंध में कोई प्रचलन वैध माना जा सकता है या नहीं।

प्रासंगिक विधि एवं संबंधित ग्रंथों का अवलोकन किया गया। पटना उच्च न्यायालय का निर्णय निरस्त किया गया।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1953 की दीवानी अपील संख्या 136 ।

पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 4 मई 1949 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति द्वारा अपील, जो अपीलीय डिक्री से अपील संख्या 1918 / 1947 में पारित हुआ था,

तथा जो दिनांक 23 जुलाई 1947 को आरा के अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा अपील संख्या 137 / 1946 में पारित डिक्री से उत्पन्न हुआ था, और जो आगे दिनांक 29 मार्च 1946 को आरा के द्वितीय मुंसिफ की न्यायालय द्वारा शीर्षक वाद संख्या 120 / 1943 में पारित डिक्री के विरुद्ध था।

अपीलकर्ता की ओर से : आर. सी. प्रसाद।

उत्तरदाता की ओर से : एस. पी. वर्मा।

1955, 7 अप्रैल। न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा दिया गया—

न्यायमूर्ति जगन्नाधदास—यह अपील संविधान के अनुच्छेद 136(1) के अंतर्गत प्रदत्त अनुमति के आधार पर पटना उच्च न्यायालय के द्वितीय अपीलीय निर्णय के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है। यह बिहार राज्य के आरा नगर में स्थित एक प्रसिद्ध मंदिर, जिसे अरण्य देवी एवं किला की देवी मंदिर कहा जाता है, के *पुजारी* एवं *पांडा* के पद से संबंधित है। हमारे समक्ष अपीलकर्ता —एक महिला—ने यह वाद इस आधार पर दायर किया कि वह प्रतिवादी के साथ संयुक्त रूप से इस पद की स्वामिनी है और इस प्रकार वह स्वयं अथवा अपने कारिंदा के माध्यम से पूजा-अर्चना करने की अधिकारी है तथा उक्त *स्थान* से प्राप्त चढ़ावे की आय में आधे हिस्से की भी अधिकारी है। यह निर्विवाद है कि यह पद दोनों पक्षकारों के परिवार से संबंधित है और इस पद के कर्तव्यों का निर्वहन प्रतिवादी एवं उसके दिवंगत भाई रामबयास पांडे द्वारा संयुक्त रूप से किया जाता था तथा वे उससे प्राप्त आय का संयुक्त रूप से उपभोग करते थे। वादी—जो रामबयास पांडे की विधवा है—यह दावा करती है कि उसने अपने पति के इस संपत्ति में हिस्से का उत्तराधिकार प्राप्त किया है और उसी आधार पर यह वाद दायर किया है। लिखित बयान में प्रतिवादी ने तीन प्रमुख प्रतिरक्षाएँ प्रस्तुत कीं, जिनमें से दो इस प्रकार हैं—(1) वादी उसके भाई रामबयास पांडे की विधिवत विवाहित पत्नी नहीं थी; और (2) रामबयास पांडे के जीवनकाल में उनके बीच इस परिवार से संबंधित पुजारी एवं पांडा के पद के संबंध में दो मंदिरों—(क) आरा तथा (ख) गंगीपुल —के लिए विभाजन हो चुका था, जिसके अंतर्गत गंगीपुल के मंदिर का पुजारी पद वादी के पति को दिया गया था और आरा स्थित अरण्य देवी मंदिर का पद प्रतिवादी को दिया गया था, तथा तब से, अर्थात् वाद दायर होने की तिथि से लगभग 11 वर्ष पूर्व से, वादी के पति का इस मंदिर के पुजारी पद से या वहाँ प्राप्त चढ़ावे से कोई संबंध नहीं था। इन दोनों प्रतिरक्षाओं को विचारण

न्यायालय तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा प्रतिवादी के विरुद्ध निराकृत किया गया और वे निष्कर्ष अंतिम हो गए। प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत तीसरी प्रतिरक्षा यह थी कि विवादित संपत्ति, अर्थात् मंदिर के *पुजारी* एवं *पांडा* का पद, किसी महिला द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त नहीं किया जा सकता। लिखित बयान में यह तर्क निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया गया हैः

"वादी किसी भी प्रकार से अरण्य देवी के पुजारी एवं पांडा के पद की अधिकारी नहीं है और न ही वह उक्त स्थान की आय एवं चढ़ावे में 1/2 हिस्सा या कोई अन्य हिस्सा प्राप्त करने की अधिकारी है, और न ही उसे स्वयं अथवा अपने कारिंदा के माध्यम से पांडा के रूप में पूजा-अर्चना करने तथा उससे आय प्राप्त करने का कोई अधिकार है। यह प्रचलन, रीति-रिवाज तथा व्यवहार के विरुद्ध है और शास्त्रों के भी विपरीत है। वाद में वर्णित संपत्ति ऐसी है जिसका उत्तराधिकार किसी महिला द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।"

इस प्रकार उठाया गया यही प्रश्न इस अपील में विचारार्थ है।

विचारण न्यायालय ने इस तर्क को निम्नलिखित शब्दों में अस्वीकार किया—

"ऐसा कोई प्राधिकार प्रस्तुत नहीं किया गया है और न ही कोई प्रचलन सिद्ध किया गया है जिससे यह प्रदर्शित हो कि इस प्रकार की संपत्ति का उत्तराधिकार महिला द्वारा नहीं लिया जा सकता।"

प्रथम अपीलीय न्यायालय ने भी इस मत की पुष्टि निम्नलिखित प्रकार से की—

"प्रतिवादी की यह आपत्ति कि वादी महिला होने के कारण अरण्य देवी मंदिर के पुजारी के पद को धारण करने के लिए अधिकृत नहीं है, अभिलेख पर उपलब्ध किसी भी साक्ष्य या सामग्री से सिद्ध नहीं होती है। ऐसा कोई तथ्य नहीं है जिससे यह प्रदर्शित हो कि वह अपने लिंग के कारण धर्म, प्रचलन या रीति-रिवाज के आधार पर इस पद को धारण करने से वंचित है। इसके अतिरिक्त यह निर्विवाद है कि वह गंगी मंदिर में उक्त पद धारण करती है।" विचारण न्यायालय तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्षों के आधार पर वादी को वांछित राहत प्रदान करते हुए यह घोषित किया गया कि वह उक्त पद में आधे हिस्से की अधिकारी है तथा उसी आधार पर उसे मध्यवर्ती लाभ की प्राप्ति का अधिकार भी है। द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया और यह मत व्यक्त किया कि "वादी महिला होने के कारण उक्त पुजारी पद का उत्तराधिकार प्राप्त करने की अधिकारी नहीं है तथा मंदिर में

क्रमवार पुजारी के रूप में कार्य करने का उसका दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता। अतः उसके द्वारा यह घोषणा प्राप्त करने का दावा कि वह पुजारी पद की अधिकारी है, स्वीकार नहीं किया जा सकता।" तथापि उन्होंने यह भी माना कि "वह अपने पति की संपत्ति से भरण-पोषण प्राप्त करने की अधिकारी होने से वंचित नहीं है, जो कि इस विशेष मामले में उस पुजारी पद से संबद्ध प्राप्त होने वाले चढ़ावे के रूप में है, जो निस्संदेह वंशानुगत था।" उन्होंने आगे यह भी अभिनिर्धारित किया कि "वह अपने भरण-पोषण के स्थान पर प्रतिवादी से चढ़ावे की आधी राशि प्राप्त करने की अधिकारी होगी" और इस प्रकार विचारण न्यायालय के डिक्री में संशोधन किया। अतः इस अपील में विचारणीय संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या कोई हिंदू महिला अपने पति द्वारा धारित मंदिर के वंशानुगत पुजारी एवं पांडा के पद का उत्तराधिकार प्राप्त करने तथा उससे संबद्ध पारिश्रमिक प्राप्त करने की अधिकारी है। यह ऐसा प्रश्न है जिस पर विभिन्न निर्णयों में कुछ मतभेद पाया जाता है और इसका सूक्ष्म परीक्षण अपेक्षित है।

यह अब सुव्यवस्थित रूप से स्थापित है कि धार्मिक पद वंशानुगत हो सकते हैं और ऐसे पद का अधिकार हिंदू विधि के अंतर्गत संपत्ति के स्वरूप का होता है। कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने *मनोहर बनाम भूपेन्द्र* में मंदिर के शैबायत पद के संबंध में यह सिद्धांत प्रतिपादित किया था, और इस मत को प्रिवी काउंसिल ने *गणेश बनाम लाल बिहारी* तथा *भवतरिणी बनाम आशालता* के दो बाद के मामलों में स्वीकार किया। इस न्यायालय के एक हालिया निर्णय, जो 'क*मिश्नर, हिंदू धार्मिक एंडोमेंट्स, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मिंद्र तीर्थ स्वामी*' के रूप में प्रकाशित है, में इस मत को पुनः दोहराया गया तथा इसे महंत के पद तक विस्तारित किया गया। शैबायत पद को संपत्ति मानने के आधार पर, इस न्यायालय ने अंगुरबाला बनाम देबरत के मामले में यह भी स्वीकार किया कि महिला को शैबायत के धार्मिक पद का उत्तराधिकार प्राप्त करने का अधिकार है, जहाँ यह प्रश्न विचाराधीन था कि क्या हिंदू महिला संपत्ति अधिकार अधिनियम शैबायत पद पर लागू होता है। शैबायत अधिकार के समान तर्क के आधार पर, किसी मंदिर में वंशानुगत पुजारी या पांडा का अधिकार भी संपत्ति के स्वरूप का होगा, विशेषकर जब उस पद से पारिश्रमिक या आय संबद्ध हो। वास्तव में, कुछ ऐसे निर्णय, जिनमें शैबायत अधिकार को संपत्ति माना गया है, वे ऐसे मामले हैं जहाँ शैबायत पद में देवता के पुजारी का कार्य तथा मंदिर के प्रबंधक का कार्य संयुक्त रूप से निहित होता है, जिसे दक्षिण भारत में 'धर्मकर्ता' कहा जाता है। मिट्टा कुंठ औधिकार्य बनाम पांडे नीरुंजन औधिकार्य के

मामले में भी प्रारंभिक काल में यह स्वीकार किया गया था कि परिवार में वंशानुगत पुजारी का पद एक ऐसी संपत्ति है जिसका विभाजन किया जा सकता है। इस निर्णय के आगे के भाग में जिन अन्य निर्णयों का उल्लेख किया जाएगा, वे भी इसी सिद्धांत को मान्यता देते हैं। अपीलाधीन वाद में उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने इस मामले को शैबायत पद के मामलों से भिन्न ठहराने का प्रयास किया और यह निष्कर्ष निकाला कि जहाँ शैबायत अधिकार में महिला उत्तराधिकार द्वारा सफल हो सकती है, वहीं पांडा एवं पुजारी के अधिकार के संबंध में उसे ऐसा उत्तराधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। किन्तु यह भेद करते समय उन्होंने इस तथ्य से इनकार नहीं किया कि पुजारी के पद का अधिकार स्वयं में संपत्ति है, जिस पर महिला उत्तराधिकार प्राप्त कर सकती है, यदि उसकी कथित अयोग्यता न हो। यह अयोग्यता उस पद से संबंधित कर्तव्यों के संदर्भ में बताई गई है, और कहा गया है कि इस दृष्टि से यह शैबायत के पद से भिन्न है।

अब इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि यद्यपि एक दृष्टि से ऐसे धार्मिक पद का अधिकार संपत्ति है, किन्तु इसमें कर्तव्य के महत्वपूर्ण तत्व भी निहित होते हैं। जैसा कि इस न्यायालय ने *अंगुरबाला बनाम देबरत तथा कमिश्नर, हिंदू धार्मिक एंडोमेंट्स, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मिंद्र तीर्थ* स्वामी के मामलों में कहा है कि "ऐसे पदों में पद और संपत्ति, कर्तव्य और व्यक्तिगत हित— दोनों तत्व परस्पर मिश्रित रहते हैं और इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।" यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि ऐसे पदों के संदर्भ में, विशेषकर जहाँ वे सार्वजनिक संस्थाओं से संबंधित हों, कर्तव्यों को प्रधान माना जाएगा तथा अधिकार और पारिश्रमिक केवल उन कर्तव्यों के अनुपूरक होते हैं। इस संबंध में देखें न्यायमूर्ति पेज के "नागेन्द्र बनाम रबिन्द्र" में पृष्ठ 495 और 496 पर किए गए अवलोकन, तथा न्यायमूर्ति सदाशिव अय्यर के "सुंदरंबल बनाम योगवनगुरुक्कल" में पृष्ठ 564 पर किए गए अवलोकन, तथा मुखर्जी द्वारा "धार्मिक न्यास" (1952 संस्करण) के पृष्ठ 201 पर।

(1) [1875] एक्सआईवी बंगाल विधि प्रतिवेदन 166।
(2) [1951] सर्वोच्च न्यायालय प्रतिवेदन 1125।
(3) [1954] सर्वोच्च न्यायालय प्रतिवेदन 1005।
(4) ए.आई.आर. 1926 कलकत्ता 490।
(5) ए.आई.आर. 1915 मद्रास 561।

विवेचन का उल्लेख किया जा सकता है। अतः यदि यह पाया जाता है कि किसी महिला को उसके पति द्वारा धारित मंदिर के वंशानुगत पुजारी पद का उत्तराधिकार प्रदान करना उस पद के कर्तव्यों के समुचित निर्वहन के अनुकूल नहीं है, तो उसके उत्तराधिकार के अधिकार को अस्वीकार करना होगा। इस प्रकार के प्रश्न के समाधान के लिए सही दृष्टिकोण प्रिवी काउंसिल द्वारा शाहर बानो बनाम आगा मोहम्मद जाफर बिंदनीम के मामले में निर्धारित किया गया है, जो यद्यपि एक मुस्लिम धार्मिक पद से संबंधित था, किन्तु समान रूप से हिंदू धार्मिक पद पर भी लागू होता है। उस मामले में उनके लॉर्डशिप्स ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा व्यक्त इस मत का अनुमोदन किया कि "ऐसा कोई विधिक निषेध नहीं है जो किसी महिला को मुतवल्ली पद धारण करने से रोके, जब तक कि उस ट्रस्ट की प्रकृति ऐसे आध्यात्मिक कर्तव्यों को शामिल न करती हो जिन्हें महिला स्वयं या प्रतिनिधि के माध्यम से उचित रूप से संपादित न कर सके," और उन्होंने कहा कि "इस प्रस्ताव के समर्थन में पर्याप्त प्राधिकार उपलब्ध है।" अतः वर्तमान मामले में विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या किसी मंदिर में पुजारी एवं पांडा का पद ऐसे कर्तव्यों को समाहित करता है जिन्हें कोई महिला स्वयं संपादित नहीं कर सकती, और यदि ऐसा है, तो क्या वह उन्हें किसी प्रतिनिधि के माध्यम से भी संपादित कराने में अयोग्य है।

इस उद्देश्य से यह आवश्यक है कि सामान्य हिंदू मंदिर में *पुजारी* के कर्तव्यों की स्पष्ट समझ हो। एक पुजारी को प्रतिमा की निर्धारित दैनिक पूजा-अर्चना के साथ-साथ विशेष अवसरों तथा वर्ष भर में निर्धारित त्योहारों पर विशेष पूजा भी संपादित करनी होती है। *रामब्रह्मा चटर्जी बनाम केदार नाथ बनर्जी* के मामले में न्यायमूर्ति सर अशुतोष मुखर्जी ने दैनिक पूजा की प्रक्रिया को निम्नलिखित शब्दों में वर्णित किया है—

"किसी प्रतिष्ठित देवमूर्ति की नियमित पूजा का सामान्य स्वरूप मंदिर की सफाई, लेपन की प्रक्रिया, पूर्व दिवस के पुष्पादि अर्पणों को हटाना, नवीन पुष्प एवं जल अर्पित करना तथा अन्य इसी प्रकार की क्रियाओं से युक्त होता है। संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त है कि देवता को एक जीवित प्राणी के रूप में कल्पित किया जाता है और उसके साथ उसी प्रकार व्यवहार किया जाता है जैसा किसी गृहस्वामी के साथ उसका विनीत सेवक करता है। दैनिक जीवन की समस्त प्रक्रियाएँ अत्यंत सूक्ष्मता के साथ संपन्न की जाती हैं; सजीव मानी गई प्रतिमा को जीवन की

(1) [1906] विधि प्रतिवेदन 31 भारतीय अपील 46, 53।

(2) ए.आई.आर. 1923 कलकत्ता 60, 62।

आवश्यकताओं एवं सुख-सुविधाओं से क्रमशः युक्त किया जाता है, यहाँ तक कि वस्त्र परिवर्तन, पके एवं कच्चे भोजन का अर्पण तथा विश्राम के लिए ले जाना भी सम्मिलित है।"

'सरस्वती का हिंदू विधि ऑफ एंडोमेंट्स' में, प्रतिष्ठित देवमूर्ति की दैनिक पूजा का स्वरूप पृष्ठ 134 और 135 पर विस्तार से वर्णित किया गया है। यह स्वीकार करना आवश्यक है कि दैनिक पूजा का स्वरूप उस धार्मिक संप्रदाय की मान्यताओं एवं प्रचलनों के अनुसार भिन्न होता है, जिसके लिए मंदिर स्थापित है और जिसमें देवमूर्ति की प्रतिष्ठा की गई है। किन्तु पूजा की विधियों एवं उनमें भिन्नताओं के बावजूद इसमें कोई संदेह नहीं है कि विभिन्न सेवाओं का संपादन, जिनमें देवमूर्ति का प्रत्यक्ष स्पर्श सम्मिलित होता है, तथा अनेक अवसरों पर वैदिक मंत्रों सहित धार्मिक स्तोत्रों का उच्चारण, पुजारी के कर्तव्यों के सामान्य एवं आवश्यक अंग होते हैं, विशेषकर उन मंदिरों में जहाँ पूजा शास्त्रानुसार संपन्न की जाती है। यह भी निर्विवाद है कि हिंदू शास्त्रों के अनुसार पुजारी के कार्य केवल कुछ सीमित वर्गों द्वारा ही संपादित किए जा सकते हैं और इसके लिए विशेष योग्यता आवश्यक होती है, तथा ये वर्ग संस्था की प्रकृति के अनुसार भिन्न हो सकते हैं। अब, प्राचीन काल में स्थिति चाहे जो भी रही हो, जिसके संबंध में स्पष्ट ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, किन्तु बाद के काल में यह सुव्यवस्थित रूप से स्थापित हो गया है कि मान्य सीमित वर्गों में होने पर भी कोई महिला स्वयं पुजारी के कर्तव्यों का निर्वहन नहीं कर सकती। यहाँ तक कि उस समय भी जब मंदिर-पूजा की परंपरा संभवतः व्यापक रूप से प्रचलित नहीं हुई थी, मनु के कुछ शास्त्रीय प्रावधानों में यह संकेत मिलता है कि महिला वैदिक मंत्रों का उच्चारण, यज्ञाग्नि में आहुति देना अथवा संस्कार संबंधी क्रियाओं का संपादन करने में असमर्थ मानी गई है (देखें—मनुस्मृति, खंड 25, पृष्ठ 330 एवं 437, अध्याय 9, धारा 18 तथा अध्याय 11, धारा 36)। चाहे यह अयोग्यता इन शास्त्रीय प्रावधानों के आधार पर हो अथवा किसी अन्य कारण से, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि महिला स्वयं पुजारी के कर्तव्यों का निर्वहन करने में अक्षम मानी गई है। (1) पंडित प्रन्नाथ सरस्वती द्वारा "हिन्दू विधि में धार्मिक न्यास", टी.एल. 1892 (1897 संस्करण)। जैसा कि बाद के समय में निम्नलिखित पाठ से स्पष्ट होता है, जो सरस्वती की "हिन्दू विधि में धार्मिक न्यास" के पृष्ठ 136 पर उद्धृत बृहन्-नारदीय पुराण से लिया गया है।

"स्त्रियाँ, वे जो यज्ञोपवीत से अभिषिक्त नहीं हैं (अर्थात् द्विज वर्ग के वे सदस्य जिनका उपनयन संस्कार अभी संपन्न नहीं हुआ है), और शूद्र, विष्णु या शिव की प्रतिमाओं को स्पर्श

करने के लिए सक्षम नहीं हैं। कोई शूद्र, यज्ञोपवीत से अभिषिक्त न हुआ व्यक्ति, स्त्री अथवा बहिष्कृत व्यक्ति यदि विष्णु या शिव को स्पर्श करता है, तो वह नरक को जाता है।"

यह अंश, शब्दशः, विष्णु और शिव की प्रतिमाओं का उल्लेख करता है, किन्तु इसके विपरीत कोई साक्ष्य न होने की स्थिति में यह युक्तिसंगत रूप से माना जा सकता है कि व्यवहार में किसी स्त्री की स्वयं पुजारी के कर्तव्यों का निर्वहन करने की अक्षमता कम से कम उन सभी सार्वजनिक मंदिरों तक विस्तृत थी, जहाँ किसी भी स्वरूप की प्रतिमा का शास्त्रों के अनुसार विधिवत् अभिषेक और स्थापना की गई थी। वास्तव में, इस विषय पर सभी वादों ने स्त्री की इस अक्षमता को स्वीकार किया है। विवाद का बिंदु यह रहा है कि क्या वह किसी योग्य प्रतिस्थापन को नियुक्त करके इन कर्तव्यों का निर्वहन कराने में भी अक्षम है। यदि इस संबंध में उसकी क्षमता को मान्यता दी जाती है और स्वीकार किया जा सकता है, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि उसे उस पद पर उत्तराधिकार पाने का अधिकार न माना जाए। अतः इस वाद में विचार हेतु वास्तविक रूप से महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या पुजारी के पद के कर्तव्यों का निर्वहन किसी प्रतिस्थापन के माध्यम से कराया जा सकता है, और यदि ऐसा है, तो क्या किसी स्त्री द्वारा ऐसे प्रतिस्थापन को नियुक्त करने के विरुद्ध कोई विशेष कारण या स्पष्ट रूप से स्थापित प्रथा विद्यमान है, जिससे वह उस पद की अधिकारी बनने से वंचित हो।

प्रारम्भिक हिन्दू समाज में पुजारी का पद केवल विभिन्न प्रकार के वैदिक अनुष्ठानों और यज्ञों के संपादन से ही संबंधित हो सकता था, चाहे वे दैनिक और नियमित प्रकृति के हों अथवा आवधिक और विशेष प्रकृति के। सिद्धांततः एक ब्राह्मण को ऐसे कार्य स्वयं अपने लिए स्वयं ही करने होते हैं, जबकि अन्य वर्गों के व्यक्तियों को उन्हें योग्य ब्राह्मणों के माध्यम से संपन्न कराना चाहिए। सिद्धांत के आधार पर हिन्दू अवधारणा में पुजारी का चयन उसके व्यक्तिगत गुणों और योग्यता के संदर्भ में किया जाता है। तथापि, वंशानुगत पुजारी व्यवस्था, जिसमें पूर्णतः सक्षम न होने वाले व्यक्तियों के ऐसे पद पर उत्तराधिकारी बनने या उसे धारण करने की संभावना रहती है, अपेक्षाकृत प्रारम्भिक काल से ही प्रचलन में आ गई प्रतीत होती है। तथापि यह प्रतीत होता है कि परिस्थितियों के स्वभाव के कारण, वंशानुगत पुजारी के स्थान पर किसी प्रतिस्थापन द्वारा अस्थायी रूप से पुजारी कर्तव्यों का निर्वहन अनिवार्य आवश्यकता का विषय था, क्योंकि हिन्दू शास्त्र जन्म और मृत्यु संबंधी अशौच जैसे अस्थायी और आकस्मिक अयोग्यताओं को मान्यता देते थे। किन्तु प्रारम्भिक ग्रंथों में इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि पुजारी पद

के कर्तव्यों का प्रतिस्थापन द्वारा निर्वहन सामान्य प्रथा थी। परन्तु तुलनात्मक रूप से बाद के काल में ऐसी प्रथा के स्पष्ट संकेत प्राप्त होते हैं। सरस्वती की “हिन्दू विधि में धार्मिक न्यास” के पृष्ठ 56 पर यह कहा गया है कि पद्म पुराण तथा अन्य ग्रंथों में अयोग्य व्यक्तियों को यह निर्देश दिया गया है कि वे पूजा ब्राह्मणों के माध्यम से संपन्न कराएँ। यह कथन मूर्ति की सेवा के निर्वहन से संबंधित है और सम्भवतः उन व्यक्तियों की अयोग्यता के संदर्भ में है जो पुजारी पद पर आसीन होते हैं। कोलब्रुक द्वारा अनूदित “अनुबंध और उत्तराधिकार पर हिन्दू विधि का संक्षेप”, जिसमें जगन्नाथ तर्कपञ्चानन की टीका संलग्न है (चतुर्थ संस्करण, हिग्गिनबोथम एंड कम्पनी, मद्रास, 1874), खण्ड 1, पुस्तक 2, अध्याय 3, खण्ड 2 के पृष्ठ 360 से 381 तक उन पुजारियों के बीच सहभागिता के विषय से संबंधित हैं जो संयुक्त रूप से पवित्र अनुष्ठानों का संचालन करते हैं। उसका अवलोकन, विशेषतः स्थान 28 से 44 तक, जिनमें विभिन्न स्मृतियों से उद्धरण तथा उन पर जगन्नाथ की टीका सम्मिलित है, स्पष्ट रूप से यह संकेत देता है कि उस समय तक वंशानुगत पुजारी व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी तथा ऐसे पुजारी कर्तव्यों का प्रतिस्थापनों द्वारा निर्वहन निश्चित रूप से प्रचलन में आ चुका था। विभिन्न नियम प्रतिपादित किए गए हैं कि जब प्रतिस्थापन पुजारी, वंशानुगत पुजारी के स्थान पर कार्य करता है, तब दोनों के बीच पारिश्रमिक का विभाजन किस प्रकार होगा। यह ध्यान देने योग्य है कि जगन्नाथ के संक्षेप के ये अंश केवल पवित्र अनुष्ठानों, अर्थात् यज्ञों तथा अन्य वैदिक या शास्त्रीय कर्तव्यों के संपादन से संबंधित पुजारी पद का ही उल्लेख करते हैं, और प्रत्यक्षतः मंदिर में मूर्ति-पूजा से संबंधित पुजारी के कर्तव्यों के निर्वहन का उल्लेख नहीं करते। यह और भी उल्लेखनीय है क्योंकि जगन्नाथ के संक्षेप के समय तक मंदिरों में प्रतिष्ठित मूर्तियों की पूजा की परंपरा पर्याप्त रूप से स्थापित हो चुकी थी। संभावित व्याख्या यह है कि जगन्नाथ का यह संक्षेप मुख्यतः विभिन्न स्मृतियों के चयनित पाठों पर टीका है, और स्मृतियों के समय में मंदिर-पूजा पर्याप्त रूप से प्रचलित नहीं हुई थी। मंदिर-पूजा की ऐतिहासिक उत्पत्ति और विकास का विस्तृत विवेचन सरस्वती की “हिन्दू विधि में धार्मिक न्यास” में किया गया है तथा इसका उल्लेख संदर्भित निर्णय में भी किया गया है। उसमें यह बताया गया है कि हिन्दू भावना के अनुसार किसी मूर्ति के लिए अर्चक या पुजारी के कर्तव्यों का निर्वहन करना पापपूर्ण माना गया था, और पुजारी या अर्चक के पद के लिए योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करने हेतु भूमि के उदार अनुदान तथा पर्याप्त लाभों के वचन जैसे प्रलोभनों की आवश्यकता पड़ती थी। समय के साथ तथा सामाजिक परिस्थितियों और आर्थिक मूल्यों में परिवर्तन के कारण, भारत के लगभग सभी प्रसिद्ध

तीर्थस्थलों में पंडा और पुजारी के पद लाभकारी बन गए, और इससे वंशानुगत पुजारियों को यह सुविधा मिली कि वे अपने कर्तव्यों का निर्वहन वेतनभोगी प्रतिस्थापनों से कराएँ और स्वयं पर्याप्त आय का लाभ उठाएँ। जिस प्रकार राजाओं या समाज का संरक्षण यज्ञों और वैदिक धार्मिक अनुष्ठानों के संदर्भ में वंशानुगत पुजारी कर्तव्यों के प्रतिस्थापनों द्वारा निर्वहन की व्यवस्था के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण प्रोत्साहन रहा होगा, उसी प्रकार मंदिरों में मूर्तियों की पूजा का व्यापक विकास तथा समय के साथ प्राप्त होने वाले पर्याप्त पारिश्रमिक ने पुजारी पद को लाभकारी बना दिया होगा और इसके परिणामस्वरूप न केवल यज्ञों या अन्य धार्मिक अनुष्ठानों के लिए बल्कि मंदिर-पूजा के लिए भी पुजारियों के कर्तव्यों के निर्वहन हेतु प्रतिस्थापनों की नियुक्ति का प्रचलन हो गया। यह प्रश्न कि यह प्रथा शास्त्रों द्वारा किस सीमा तक अनुमत है, हमारे समक्ष विचाराधीन नहीं है। किन्तु इससे इनकार नहीं किया जा सकता, और वास्तव में यह सामान्य ज्ञान का विषय है, कि वर्तमान समय में वंशानुगत पुजारी पदों के कर्तव्य प्रायः प्रतिस्थापनों द्वारा ही संपादित किए जाते हैं, और ऐसे प्रतिस्थापन का चयन, स्वाभाविक रूप से, प्रथा द्वारा अनुमत सीमित वर्ग तक ही सीमित रहता है। न्यायालयों के विचारार्थ प्रश्न यह है कि ऐसी स्थिति में क्या किसी स्त्री को, शास्त्रीय विधि से प्रतिष्ठित और अभिषिक्त मंदिरों की मूर्तियों के लिए पुजारी के रूप में स्वयं कार्य करने में उसकी सर्वमान्य व्यक्तिगत अयोग्यता के कारण, वंशानुगत पुजारी पद के उत्तराधिकार से वंचित किया जाना चाहिए, तथा क्या उसे इस क्षमता से भी वंचित किया जाना चाहिए कि वह किसी योग्य प्रतिस्थापन के माध्यम से पुजारी कर्तव्यों का कुशलतापूर्वक निर्वहन कराकर संपत्ति को अपने पास बनाए रख सके। इस कथित वंचना का एकमात्र आधार जगन्नाथ के संक्षेप का एक अंश है, जो इस प्रकार है (देखें खण्ड 1, पृष्ठ 379, स्थान 43 के "निर्णयांश")।

"पत्नी और अन्य व्यक्ति, जो लिंग के कारण पवित्र अनुष्ठानों के संपादन के लिए अयोग्य हैं, किसी प्रतिस्थापन की नियुक्ति नहीं कर सकते; जैसे कि अशुद्ध व्यक्ति वेदों द्वारा निर्धारित किसी विधिवत कृत्य का संपादन नहीं कर सकता, अतः पत्नियों का पुजारी के पद में कोई अधिकार नहीं होता।"

अब इस प्रश्न से पृथक कि क्या इस अंश को पर्याप्त रूप से प्रामाणिक माना जा सकता है, इसके सही आशय के संबंध में कुछ मतभेद रहा है। "सुंदरम अम्मल बनाम योगवनगुरुक्कल" में इस अंश पर न्यायमूर्ति सदाशिव अय्यर द्वारा यह दर्शाने हेतु भरोसा किया गया है कि स्त्रियाँ

प्रतिस्थापन के माध्यम से भी पुजारी के कर्तव्यों का निर्वहन करने में अयोग्य हैं और इस कारण उन्हें उस पद के उत्तराधिकार का कोई अधिकार नहीं है। वर्तमान वाद में उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायमूर्तियों ने भी इस पर भरोसा किया है। "अन्नय तंत्री बनाम अम्माका हेंगसु" में न्यायमूर्ति शेषगिरि अय्यर ने अपने संदर्भित निर्णय में इस अंश का उल्लेख किया है और यह मत व्यक्त किया है कि यह कोई स्पष्ट मत व्यक्त नहीं करता। "हिन्दू तथा मुहम्मदन धार्मिक न्यास" पर गणपति अय्यर (द्वितीय संस्करण) में विद्वान लेखक ने इसी अंश पर टिप्पणी करते हुए अपनी पुस्तक के पृष्ठ 453 पर निम्नलिखित कहा है:

"जगन्नाथ वहाँ इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि क्या पत्नियों और अन्य व्यक्तियों को इस पुजारी पद के उत्तराधिकार का अधिकार प्राप्त है। जगन्नाथ की चर्चाओं के साथ प्रायः ऐसा ही होता है कि उनके अंतिम मत को निश्चित रूप से बताना कठिन होता है। किन्तु हमें निश्चित रूप से यह प्रतीत होता है कि जगन्नाथ का मत यह है कि स्त्रियाँ प्रतिस्थापन के माध्यम से कर्तव्यों का निर्वहन कराते हुए इस पद को उत्तराधिकार में प्राप्त कर सकती हैं और उस पद से संबंधित पारिश्रमिक का उपभोग कर सकती हैं।"

विवादित अंश का उसके प्रसंग के संदर्भ में सावधानीपूर्वक विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि विद्वान लेखक का यह मत सही है। किसी भी स्थिति में इस अंश पर विपरीत मत के समर्थन में निश्चित रूप से भरोसा नहीं किया जा सकता। जिस चर्चा के संदर्भ में यह अंश टीका में आता है, वह पुस्तक 2 के अध्याय 3 के खण्ड 2 में स्थान 43 के अंतर्गत है, जो नारद का एक पाठ है और वंशानुगत पुजारियों से संबंधित है। जिस कथन पर भरोसा किया गया है, वह उस स्थान पर आता है जहाँ स्त्री की वंशानुगत पुजारी के कर्तव्यों के निर्वहन में अयोग्यता तथा उसकी सभी प्रकार की संपत्ति, जिसमें वंशानुगत पद भी सम्मिलित है, के उत्तराधिकार के अधिकार की मान्यता के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है। इस चर्चा के प्रासंगिक अंश नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं:

(1) ए.आई.आर. 1915 मद्रास।

(2) ए.आई.आर. 1919 मद्रास 398।

"यह संदेह किया जाता है कि क्या पत्नियों और अन्य व्यक्तियों को इस उत्तराधिकार का अधिकार है, यद्यपि विभाजन, जो अग्रहारिकों तथा अन्य अनुष्ठान करने वाले पुजारियों में निहित अधिकार की स्वीकृति पर आधारित है, सामान्य उत्तराधिकार के विभाजन के समान होना चाहिए। पुरुष वंश में प्रपौत्र तक उत्तराधिकारियों के अभाव में पत्नी के उत्तराधिकार के अधिकार की घोषणा उत्तराधिकार के शीर्षक के अंतर्गत की जाएगी, तो इस स्थिति में उसके अधिकार को निरस्त करने का क्या आधार हो सकता है? यह तर्क नहीं दिया जाना चाहिए कि पत्नी को ग्राम पर कोई अधिकार नहीं हो सकता, क्योंकि वह स्त्री होने के कारण पवित्र अनुष्ठानों के संपादन के लिए अयोग्य है, और क्योंकि अग्रहारिकों तथा अन्य व्यक्तियों की पत्नियाँ उन तिलों को प्राप्त करने में पूर्णतः अक्षम हैं जो पुजारियों को दानस्वरूप दिए जाते हैं। तिल को प्रतिस्थापन के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है और अनुष्ठान भी उसी के माध्यम से संपन्न किए जा सकते हैं। यह तर्क भी नहीं दिया जाना चाहिए कि यदि ऐसा हो, तो यज्ञ-शुल्क तथा नियमित देयों पर अधिकार प्रतिस्थापन में निहित हो जाएगा। पत्नी उस संपत्ति का लाभ प्राप्त कर सकती है जो प्रतिस्थापन द्वारा अर्जित की गई हो, जैसे कि यजमान को अनुष्ठान संपन्न करने वाले पुजारी द्वारा किए गए कर्मों का लाभ प्राप्त होता है। तथापि, इसमें यह अंतर है कि यजमान को अनुष्ठान करने वाले पुजारी द्वारा किए गए कर्मों से पुण्य प्राप्त होता है, जबकि मध्यस्थ कर्ता को ऐसा कोई पुण्य प्राप्त नहीं होता; किन्तु यदि अनुष्ठान करने वाले पुजारी का कर्तव्य प्रतिस्थापन द्वारा किया जाता है, तो यज्ञ-शुल्क पर अधिकार प्रारम्भ में प्रतिस्थापन में निहित होता है और उसके माध्यम से उस विधवा में निहित होता है जो उसकी अधिकारी है। यह आरोप किया जाता है कि इस व्याख्या के समर्थन में कोई प्रामाणिक आधार नहीं है।"

*   *   *   *

"वह पाठ जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि 'जो व्यक्ति स्वयं कार्य करने में असमर्थ हो, वह अपने लिए किसी अन्य को नियुक्त करे', इसी व्याख्या का आधार है; किन्तु किसी बहिष्कृत या अन्य ऐसे व्यक्ति की संपत्ति, जो विधिवत् अनुष्ठानों के लिए अयोग्य है, उसी प्रकार पूर्णतः नष्ट हो जाती है जैसे उसके पितृगत स्वर्ण, रजत आदि पर अधिकार का लोप हो जाता है। इसका स्पष्टीकरण उत्तराधिकार संबंधी पंचम पुस्तक में किया जाएगा। *स्त्रियाँ और अन्य व्यक्ति, जो लिंग के कारण पवित्र अनुष्ठानों के संपादन के लिए अयोग्य हैं, किसी प्रतिस्थापन की नियुक्ति*

नहीं कर सकते; जैसे कि अशुद्ध व्यक्ति वेदों द्वारा निर्धारित किसी विधिवत कृत्य का संपादन नहीं कर सकता; अतः स्त्रियों का पुजारी के पद में कोई अधिकार नहीं होता।"

इस चर्चा के अंत में निम्नलिखित महत्वपूर्ण अंश दिया गया है:

"**अतः इस कठिनाई का इस प्रकार समाधान किया गया है; स्त्रियाँ केवल उसी के लिए अधिकारिणी हैं जिसके लिए वे योग्य हैं। जहाँ तक इस कथन का संबंध है कि स्त्रियाँ, अयोग्य होने के कारण, प्रतिस्थापन नियुक्त नहीं कर सकतीं, इसे इस प्रकार समझना चाहिए: वेदों द्वारा निर्धारित विधिवत अनुष्ठानों के लिए अयोग्य होने के कारण वे ऐसे अनुष्ठानों के लिए प्रतिस्थापन नियुक्त नहीं कर सकतीं; किन्तु लौकिक कार्यों के लिए योग्य होने के कारण, लौकिक विषयों में उनके द्वारा प्रतिस्थापन नियुक्त करने में कोई बाधा नहीं है; और अधिकार उत्तराधिकार के क्रम में अगले अधिकारी को प्राप्त होना चाहिए, जैसा कि अन्य स्थान (पुस्तक 5, श्लोक 477) में उद्धृत पाठ से तथा इस कारण से कि स्त्रियाँ पुरुषों पर आश्रित होती हैं।** अन्न आदि संपत्ति का उपभोग उत्तराधिकार की अधिकारी स्त्री द्वारा किया जा सकता है; किन्तु स्वर्ण, रजत आदि को सुरक्षित रखा जाना चाहिए; यदि वह उसकी रक्षा नहीं कर सकती, तो उसे उसके पति के उत्तराधिकारी को सौंप दिया जाए, जैसा कि उत्तराधिकार शीर्षक के अंतर्गत उल्लेख किया जाएगा। यहाँ, चूँकि स्त्री उस पद को सुरक्षित नहीं रख सकती, अतः उसका निर्वहन उसके पति की पुत्री के पुत्र अथवा अन्य उत्तराधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए; किन्तु उससे प्राप्त आय का उपभोग स्त्री द्वारा किया जाएगा। तथापि, यदि पुत्री का पुत्र अपनी मातामही के साथ विवाद में हो, तो उस कार्य का निर्वहन किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है; यदि उस व्यक्ति के मातामह के पीछे पत्नी जीवित हो, तो वह उस मातामह की संपत्ति का अधिकारी नहीं होता; और यदि मातामही विवाद उत्पन्न करे, तो उसका समाधान आपसी सहमति से किया जाना चाहिए।"

उपसंहार का भाग यह संकेत करता प्रतीत होता है कि ऊपर रेखांकित और जिस पर भरोसा किया गया है, वह अधिक स्पष्ट अंश वास्तव में एक आपत्ति के रूप में है जिसका उत्तर दिया जा रहा है, और अंतिम निष्कर्ष यह है कि पद के कर्तव्यों का निर्वहन उत्तराधिकार में अगले पुरुष द्वारा कराकर उत्तराधिकार प्राप्त करने का अधिकार मान्य है। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायमूर्तियों ने वास्तव में इस उपसंहार के अंश का उल्लेख किया है, किन्तु उसके सही आशय को ग्रहण नहीं किया है।

अब यह विचार करना आवश्यक है कि विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णयों के संदर्भ में यह प्रश्न किस प्रकार स्थित है। मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णयों में इस विषय पर पर्याप्त संख्या में वाद उपलब्ध हैं। प्रारम्भिक निर्णयों में से एक मद्रास सदर दीवानी अदालत का *"सेशम्मल बनाम सौन्दरराज अय्यर"* का निर्णय है, जिसमें सदर न्यायालय के पंडितों की राय का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि स्त्री अपने लिंग के कारण आचार्यपुरुष के पद के उत्तराधिकार से अयोग्य है; किन्तु उन्हीं पंडितों की राय यह स्पष्ट रूप से मान्यता देती है कि अर्चक या पुजारी जैसे धार्मिक पद स्त्री द्वारा धारण किए जा सकते हैं, बशर्ते वह उनके कर्तव्यों का निर्वहन किसी योग्य पुरुष प्रतिस्थापन के माध्यम से कराए। *"तंकिराला चिरंजीवि बनाम राम माणिक्य राव राजय लक्ष्मम्मा"* में यह कहा गया कि इस धारणा का कोई आधार नहीं है कि कोई अवयस्क, स्त्री, अथवा वेदों में अप्रवीण व्यक्ति मंदिर में सेवा के अधिकार से वंचित हो जाएगा, और यह दायित्व उस व्यक्ति पर होगा जो अयोग्यता का आरोप लगाता है कि वह उसे सिद्ध करे। विद्वान न्यायमूर्तियों ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया (जो सामान्य ज्ञान और अनुभव का विषय माना गया) कि "मंदिरों में सेवा प्रतिस्थापनों द्वारा कराई जा रही है।" *"रामसुंदरम पिल्लै बनाम सवुंदराथा अम्मल"* में विद्वान न्यायमूर्तियों ने इस प्रकार कहा:

"यह असंदिग्ध है कि इस तथा अन्य उच्च न्यायालयों ने अनेक वादों में इस धारणा पर कार्य किया है (जिसे प्रश्नगत नहीं किया गया) कि स्त्रियाँ धार्मिक पद धारण कर सकती हैं और उनके कर्तव्यों का निर्वहन प्रतिस्थापन के माध्यम से करा सकती हैं।"

उन्होंने आगे कहा:

"यह संभव है कि संबंधित पक्ष इस विचार के इतने अभ्यस्त हो गए हों कि स्त्री पदधारक प्रतिस्थापन के माध्यम से कार्य कर सकती है, कि सामान्यतः उन्हें इस व्यवस्था की वैधता पर प्रश्न उठाने का विचार ही नहीं आया, और विवाद के अभाव में न्यायालयों ने भी इसे समर्थन देने के लिए किसी वैध प्रथा के प्रमाण की अपेक्षा किए बिना कुछ अधिक ही सहजता से इसे वैध मान लिया।"

(1) [1853] मद्रास सदर दीवानी अदालत प्रतिवेदन 261।

(2) ए.आई.आर. 1915 मद्रास 505(1)।

(3) ए.आई.आर. 1915 मद्रास 725।

"राजेश्वरी अम्मल बनाम सुब्रमण्यम अर्चक" में विद्वान न्यायमूर्तियों ने इस प्रकार कहा:

"हमारा मत है कि हिन्दू विधि या प्रथा के अंतर्गत किसी स्त्री को वंशानुगत धार्मिक पद के उत्तराधिकार से अयोग्य नहीं माना जा सकता, और वह उन कर्तव्यों का निर्वहन, जिन्हें वह अपने लिंग के कारण स्वयं करने में अयोग्य है, प्रतिस्थापन के माध्यम से करा सकती है।"

मद्रास उच्च न्यायालय में इस प्रचलित दृष्टिकोण के विरुद्ध एकमात्र भिन्न मत न्यायमूर्ति सदाशिव अय्यर का "*सुंदरंबल अम्मल बनाम योगवनगुरुक्कल*" में था। उन्होंने यह दृढ़ मत व्यक्त किया कि अस्थायी अथवा आकस्मिक अवसरों को छोड़कर पुजारी पद के कर्तव्यों का प्रतिस्थापन के माध्यम से निर्वहन करने की प्रथा लोकनीति के पूर्णतः प्रतिकूल है और इसे मान्यता नहीं दी जानी चाहिए। उसी विषय से संबंधित एक बाद के निर्णय "अन्नय तंत्री बनाम अम्माका हेंगसु" में उन्होंने यह कहा:

"यह सर्वविदित है कि प्रतिस्थापन का चयन प्रायः ऐसी प्रक्रिया से किया जाता है जिसमें जो व्यक्ति विधवा को पद से प्राप्त पारिश्रमिक का अधिकतम भाग रखने देने के लिए सहमत होता है और स्वयं न्यूनतम पारिश्रमिक स्वीकार करता है, उसी को प्रतिस्थापन के रूप में नियुक्त किया जाता है।"

विद्वान न्यायमूर्ति ने यह भी इंगित किया कि

"ऐसी प्रथा हानिकारक है और यदि यह प्रथा द्वारा मान्य भी हो, तो भी इसे न्यायालयों द्वारा मान्यता नहीं दी जानी चाहिए।" "यदि यह प्रथा द्वारा स्वीकृत भी हो, तो भी इसे न्यायालयों द्वारा मान्यता नहीं दी जानी चाहिए।"

इस टिप्पणी में निश्चय ही बल है। किन्तु इस प्रकार के विषय में, जहाँ शास्त्रों में पुजारी पद के कर्तव्यों के निर्वहन के लिए प्रतिस्थापन की नियुक्ति के विरुद्ध कोई स्पष्ट निषेध नहीं है, और जहाँ ऐसा पद एक वंशानुगत संपत्ति के अधिकार के रूप में विकसित हो चुका है, वहाँ

(1) ए.आई.आर. 1917 मद्रास 963(2)।

(2) ए.आई.आर. 1915 मद्रास 561।

(3) ए.आई.आर. 1919 मद्रास 598 (पूर्ण पीठ)।

लोकनीति के विचार को इस सीमा तक लागू नहीं किया जा सकता कि स्वयं उस अधिकार को ही नकार दिया जाए। ऐसी स्थिति में समान रूप से यह भी बलपूर्वक रेखांकित किया जाना चाहिए कि इस पद का कर्तव्य पक्ष भी अत्यंत महत्वपूर्ण है, और मंदिर के प्रबंधन के लिए उत्तरदायी उच्च प्राधिकरणों का यह दायित्व है कि वे सतर्कतापूर्वक अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन करते हुए पुजारी पद पर आसीन व्यक्ति के अधिकारों के प्रयोग पर नियंत्रण रखें (या अन्य हितधारक व्यक्ति न्यायालय के माध्यम से उपयुक्त कदम उठाएँ), जब यह पाया जाए कि सेवाएँ उचित या कुशलतापूर्वक संपादित नहीं की जा रही हैं। ऐसे पदों की विशेष प्रकृति, जिसमें संपत्ति का तत्व तथा कर्तव्य का तत्व दोनों सम्मिलित होते हैं, को दृष्टिगत रखते हुए इसमें कोई संदेह नहीं है कि संस्थाओं के प्रभारी उच्च प्राधिकरणों अथवा अन्य हितधारकों को यह अधिकार प्राप्त है, जिसे उपयुक्त विधिक उपायों द्वारा प्रवर्तित किया जा सकता है। *"राजा पियारी मोहन मुखर्जी बनाम मनोहर मुखर्जी"* में प्रिवी काउंसिल ने यह मान्यता दी है कि यद्यपि एक सेवायत का अपने पद के संबंध में व्यक्तिगत हित होता है, तथापि उसके कर्तव्यों के निर्वहन की सुरक्षा आवश्यक है, और यदि वह स्वयं को ऐसी स्थिति में रखता है जहाँ अपने पद के दायित्वों का निष्ठापूर्वक निर्वहन करना संभव नहीं रह जाता, तो उसे पद से हटाया जा सकता है।

जहाँ तक मद्रास उच्च न्यायालय के क्षेत्र का संबंध है, यह विवाद पूर्ण पीठ के निर्णय "अन्नय तंत्री बनाम अम्माका हेंगसु" द्वारा निपटाया जा चुका है, जिसमें न्यायमूर्ति सदाशिव अय्यर द्वारा व्यक्त मत को विशेष रूप से इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि "मद्रास उच्च न्यायालय के अनेक निर्णय तथा अन्य उच्च न्यायालयों के निर्णयों के अनुरूप यह स्थापित किया गया है कि विधवा, पुत्री तथा अंतिम पुरुष अर्चक की पुत्री, प्रचलित प्रथा के अनुसार, अर्चक के पद के उत्तराधिकार की अधिकारी होती हैं, और वे उसके कर्तव्यों का निर्वहन प्रतिस्थापन के माध्यम से कराते हुए उस पद को अपने उत्तराधिकारियों को हस्तांतरित कर सकती हैं, जिनमें पुरुष उत्तराधिकारी स्त्रियों की अपेक्षा वरीय होते हैं और सामान्यतः स्वयं कर्तव्यों का निर्वहन करने में सक्षम होते हैं।"

मद्रास उच्च न्यायालय के ये निर्णय इस तथ्य तथा उसकी वैधता दोनों को स्वीकार करते प्रतीत होते हैं कि ऐसी प्रथा को न केवल उसके अपने क्षेत्राधिकार में बल्कि अन्य उच्च न्यायालयों के

(1) [1921] विधि प्रतिवेदन 48 भारतीय अपील 258।

(2) ए.आई.आर. 1919 मद्रास 598 (पूर्ण पीठ)।

क्षेत्राधिकार में भी न्यायालयों द्वारा मान्यता प्राप्त है। तथापि, यह तर्क दिया जाता है कि अन्य उच्च न्यायालयों के निर्णयों के संदर्भ में ऐसी कोई प्रथा निश्चित रूप से स्थापित नहीं मानी जा सकती।

अन्य उच्च न्यायालयों के संबंध में यह सत्य है कि इस विषय पर प्रतिवेदनों में उपलब्ध वास्तविक वादों की संख्या अधिक नहीं है। बंबई उच्च न्यायालय में प्रारम्भिक निर्णयों में से एक 1866 का *"केशवभट बिन गणेशभट बनाम भागीरथीबाई कोम नारायणभट"* का वाद है, जिसमें विद्वान न्यायमूर्तियों ने इस प्रकार कहा:

"इस आपत्ति के संबंध में कि कोई हिन्दू स्त्री उस पद से संबंधित कर्तव्यों का निर्वहन नहीं कर सकती जिसके निर्वाह के लिए यह भत्ता प्रदान किया गया है, यह कहा जा सकता है कि प्रतिवादी ने अपने इस कथन के समर्थन में किसी प्रथा के अस्तित्व को सिद्ध नहीं किया है।"

उस वाद में विवादित दावा उस वार्षिक भत्ते के संबंध में था, जो पूना के निकट बनेश्वर स्थित महादेव मंदिर में कुछ धार्मिक सेवाओं के निर्वहन हेतु एक परिवार के सदस्यों को सरकारी कोष से दिया जाता था। *"सीतारामभट एवं अन्य बनाम सीताराम गणेश"* में सारांश इस प्रकार है:

"संकेततः, यह कि वंशानुगत पुजारी पद, पुरुषों के अभाव में, स्त्रियों के माध्यम से अवतरित होता है।"

प्रतीत होता है कि वही आधार उस निर्णय का था, यद्यपि इस विषय पर स्पष्ट रूप से निर्णय नहीं किया गया था। कलकत्ता में प्रारम्भिक वादों में से एक "पूरण नारायण दत्त बनाम काशीश्वरी दोस्सी" है। उसमें यह मान्यता दी गई कि एक स्त्री पुजारी पद की उत्तराधिकारी हो सकती है, और इसके विपरीत तर्क को इस आधार पर निरस्त किया गया कि निम्न अपीलीय न्यायालय ने साक्ष्य के आधार पर इस तथ्य को स्थापित पाया था तथा प्रतिवादी को छोड़कर किसी अन्य ने इस आपत्ति को नहीं उठाया था।

"जॉय देव सुरमा बनाम हुरोपट्टी सुरमा" में भी यही प्रश्न उठाया गया था, अर्थात् क्या हिन्दू विधि के अनुसार कोई स्त्री पुजारी पद का उत्तराधिकार प्राप्त कर सकती है, और इस तर्क के

(1) 3 बम्बई उच्च न्यायालय प्रतिवेदन, अपील संबंधी दीवानी क्षेत्राधिकार 75।

(2) 6 बम्बई उच्च न्यायालय प्रतिवेदन, अपील संबंधी दीवानी क्षेत्राधिकार 250।

(3) [1865] 3 साप्ताहिक प्रतिवेदन 179।

समर्थन में कोलब्रुक के संक्षेप के उस अंश पर भरोसा किया गया था जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है। इस तर्क के परिप्रेक्ष्य में विद्वान न्यायमूर्तियों ने वाद को निम्न न्यायालय को इस प्रश्न के निर्धारण हेतु वापस भेज दिया कि क्या किसी विशेष प्रथा या हिन्दू विधि के किसी नियम के अनुसार स्त्री को पुजारी पद का उत्तराधिकार प्राप्त करने का अधिकार है। उस वाद में मंदिर के डोलोई का पद संबंधित था। यह स्पष्ट नहीं है कि उस पर क्या निष्कर्ष प्राप्त हुआ और अंततः इस विषय का क्या निर्णय हुआ। *"राधा मोहन मुण्डल बनाम जदूम्मी दोस्सी"* में न्यायिक समिति के माननीय सदस्यों ने विचारण न्यायालय के निर्णय से निम्नलिखित अंश को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया:

"वे (परिवार के सदस्य) केवल यह कहते हैं कि उक्त संपत्तियाँ देवोत्तर प्रकृति की होने के कारण सह-भागियों के बीच विभाजन के योग्य नहीं हैं; और यह कि वादी, जो निःसंतान विधवा है, देवताओं की सेवा का संचालन करने में सक्षम नहीं है। यह कि उक्त संपत्तियाँ सह-भागियों के बीच विभाजन के योग्य नहीं हैं, एक ऐसा तथ्य है जिसे मुझे स्वीकार करना होगा; किन्तु मैं ऐसा कोई कारण नहीं देखता कि परिवार की कोई विधवा देवताओं की सेवा के पर्यवेक्षण से अयोग्य क्यों ठहराई जाए। प्रतिवादियों द्वारा यह नहीं कहा गया है कि परिवार में कोई ऐसा नियम स्थापित किया गया है जिसके अनुसार विधवाओं को उपर्युक्त पर्यवेक्षण से वंचित किया गया हो। इसके विपरीत, हिन्दुओं में ब्राह्मणों के अतिरिक्त किसी अन्य जाति के व्यक्तियों को देवता की सेवा अपने हाथों से करने, अर्थात् प्रतिमा को स्पर्श करके पूजा करने का अधिकार नहीं होता। अन्य जातियों के लोग केवल अपने द्वारा स्थापित देवताओं और देवियों की सेवा का पर्यवेक्षण करते हैं, जबकि वास्तविक पूजा वे ब्राह्मणों से कराते हैं। इस प्रकार, जब उपर्युक्त वर्णित व्यक्तियों को इस प्रकार से मूर्तियों की सेवा करने का अधिकार है, तो उनके परिवार की विधवाएँ उसी प्रकार से पूजा का संचालन क्यों नहीं कर सकतीं?.................. अतः ऐसा कुछ भी नहीं है जो न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने से रोके कि वादी को प्रतिवादियों के लिखित कथन के पैरा 12 में वर्णित देवोत्तर संपत्तियों का कब्जा रखने तथा अन्य सह-भागियों के साथ संयुक्त रूप से देवताओं की सेवा का पर्यवेक्षण करने का अधिकार है।"

(1) [1871] 16 साप्ताहिक प्रतिवेदन 282।

(2) 23 साप्ताहिक प्रतिवेदन 369।

"महामाया देवी बनाम हरिदास हलदार" में यह मान्यता दी गई है कि प्रथा के अनुसार कलकत्ता के कालीघाट मंदिर के पाला वंशानुगत होते हैं और यह अप्रासंगिक है कि उत्तराधिकारी पुरुष हो या स्त्री। इससे आवश्यक रूप से यह भी मान्यता प्राप्त होती है कि स्त्री में यह क्षमता होती है कि वह सीमित वर्ग से लिए गए किसी पुरुष प्रतिस्थापन के माध्यम से पूजा का निर्वहन करा सके। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, मद्रास उच्च न्यायालय के बाहर इस विषय से संबंधित प्रतिवेदित वाद अधिक संख्या में नहीं हैं। किसी भी स्थिति में, इस प्रश्न से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित अन्य वाद हमारे संज्ञान में प्रस्तुत नहीं किए गए हैं, यद्यपि सेवायत के पद के उत्तराधिकार तथा उसके कर्तव्यों के प्रतिस्थापन द्वारा निर्वहन से संबंधित अनेक वाद हैं, जो केवल पुजारी या अर्चक के पद से संबंधित वादों से भिन्न हैं। अन्य उच्च न्यायालयों के प्रतिवेदनों में निर्णयों की अल्पता का कारण संभवतः वही है जिसका उल्लेख मद्रास के एक वाद में किया गया है, अर्थात् स्त्रियों द्वारा इस पद का उत्तराधिकार प्राप्त करना और उसके कर्तव्यों का निर्वहन प्रतिस्थापन के माध्यम से कराना इतनी सामान्य और सुव्यवस्थित प्रथा थी कि उसे गंभीरता से विवादित नहीं किया गया और न्यायालयों के समक्ष नहीं लाया गया। इसके अतिरिक्त, निजी पारिवारिक मंदिरों की स्थापना तथा ऐसे मंदिरों में देव-सेवा के लिए बड़े और पर्याप्त संपत्तियों का दान, यद्यपि दक्षिण भारत में कुछ हद तक कम प्रचलित है, किन्तु बंगाल तथा कुछ अन्य राज्यों में पर्याप्त रूप से सामान्य है। बंगाल में प्रचलित *दायभाग* उत्तराधिकार व्यवस्था तथा उन परिस्थितियों के कारण जहाँ पुत्रहीन संयुक्त परिवारों में पत्नियों और पुत्रियों को उत्तराधिकार प्राप्त होने के अवसर अधिक होते हैं, इन क्षेत्रों में स्त्रियों द्वारा पुजारी पद का उत्तराधिकार प्राप्त करने और परिवार के अन्य सदस्यों के माध्यम से प्रतिस्थापन द्वारा कर्तव्यों का निर्वहन कराने की प्रथा स्वाभाविक रूप से सामान्य रही होगी। *"जालंधर ठाकुर बनाम झरुला दास"* में प्रतिवेदित वाद भागलपुर के सिंहेश्वर मंदिर के सेवायत पद से संबंधित है, और उसके तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि उस पद पर स्त्रियों का उत्तराधिकार निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया था। यह बिहार राज्य में, जहाँ से वर्तमान वाद उत्पन्न हुआ है, पुजारी पद पर स्त्रियों के उत्तराधिकार की प्रथा के प्रचलन का स्पष्ट संकेत है।"

(1) ए.आई.आर. 1915 कलकत्ता 161(2)।

इस विषय पर प्रतिवेदित वादों का सावधानीपूर्वक अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री द्वारा पुजारी पद का उत्तराधिकार प्राप्त करना और उसके कर्तव्यों का निर्वहन किसी योग्य प्रतिस्थापन के माध्यम से कराना एक ऐसी प्रथा है जिसे पर्याप्त रूप से मान्यता प्राप्त है। इसके विपरीत शास्त्रीय हिन्दू विधि में कुछ भी नहीं है। न ही यह कहा जा सकता है कि ऐसी प्रथा की मान्यता हिन्दू विधि की दृष्टि से लोकनीति के प्रतिकूल है। जैसा कि पूर्व में इंगित किया गया है, वर्तमान विधिक स्थिति में लोकनीति के विचार को केवल उसी सीमा तक प्रभाव दिया जा सकता है जहाँ तक पद से संबंधित कर्तव्यों के समुचित निर्वहन को सुनिश्चित करना आवश्यक हो। पद के कर्तव्यों के उचित और कुशल निर्वहन के अधीन, सिद्धांत अथवा प्रामाणिकता के आधार पर ऐसा कोई कारण नहीं है कि किसी स्त्री को उसके पति द्वारा धारण किए गए वंशानुगत पद के उत्तराधिकार से वंचित किया जाए अथवा उसे इस अधिकार से रोका जाए कि वह पद के कर्तव्यों का निर्वहन प्रतिस्थापन के माध्यम से कराए, सिवाय उन मामलों के जहाँ इसके विपरीत कोई प्रथा प्रतिपादित और सिद्ध की गई हो। वर्तमान वाद में ऐसी प्रथा का उल्लेख प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित कथन में किया गया था, किन्तु उसके समर्थन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया। वास्तव में, जैसा कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने इंगित किया है, दो मंदिरों के पदों के विभाजन का कथन तथा गंगुपाल स्थित अन्य मंदिर के पद पर वादी के अधिकार की निहित स्वीकृति, इसके विपरीत प्रथा का संकेत देती है। अतः हम इस मत के हैं कि वादी-अपीलकर्ता का दावा सिद्ध होता है और वह उत्तराधिकार प्राप्त करने की अधिकारी है।

उपरोक्त चर्चा मुख्यतः ऐसे सार्वजनिक मंदिर के संदर्भ में अधिक प्रासंगिक है, जिसमें प्रतिमा का शास्त्रीय विधि से प्रतिष्ठापन और अभिषेक किया गया हो तथा पूजा शास्त्रों के अनुसार होती हो। अभिलेख पर ऐसा कुछ नहीं है जिससे यह ज्ञात हो कि वर्तमान वाद का मंदिर इस श्रेणी में आता है या नहीं। यदि तथापि मंदिर निजी है अथवा उसमें स्थित प्रतिमा शास्त्रीय विधि से अभिषिक्त नहीं है, तो वादी के पक्ष में स्थिति और भी सुदृढ़ हो जाती है और उसके अधिकार को गंभीरता से चुनौती नहीं दी जा सकती। इस चरण पर एक अन्य विषय का उल्लेख करना भी उपयुक्त है। वर्तमान वाद में पद से संबद्ध पारिश्रमिक के रूप में यह कहा गया है कि वह दैनिक

(1) ए.आई.आर. 1914 प्रिवी काउंसिल 72।

तथा अन्य चढ़ावे हैं जो दर्शनार्थ आने वाले भक्तों द्वारा पूजा के समय देवता को अर्पित किए जाते हैं। इस वाद के दोनों पक्ष इस सामान्य आधार पर न्यायालय में आए हैं कि यही पारिश्रमिक का स्वरूप है। यदि मंदिर एक सार्वजनिक संस्था है (अर्थात् निजी पारिवारिक मंदिर नहीं है), तो ऐसे चढ़ावों को पुजारी द्वारा अपने पारिश्रमिक के रूप में ग्रहण किया जा सकता है या नहीं, तथा इस संबंध में कोई प्रथा वैध है या नहीं—यह प्रश्न इस वाद में हमारे समक्ष विचाराधीन नहीं है।

अतः परिणामस्वरूप, अपील को सभी स्तरों पर व्यय सहित स्वीकार किया जाता है और विचारण न्यायालय की डिक्री को पुनः स्थापित किया जाता है।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।